

चंद्र बंसी सिंह एवं अन्य. आदि.

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य. आदि.

22 अगस्त, 1984

[एस. मुर्तजा फ़ज़ल अली, ए. वरदराजन एवं

सब्यसाची मुखर्जी, न्यायमूर्तिगण]

भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 14—भू-अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 4 के अंतर्गत कार्यवाही। 19.8.74 को आवास बोर्ड के लिए भूमि अर्जित करने हेतु की गई किंतु 24.5.80 को किसी विशेष प्रभावशाली परिवार की भूमि के एक छोटे भाग को अर्जन से छूट दी गई—क्या उक्त भूमि की मुक्ति संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है और क्या संपूर्ण अर्जन कार्यवाही मुक्ति के उक्त कार्य से दूषित होगी—देय प्रतिकर, धारा 4 अधिसूचना की तारीख को या कब्जे के वास्तविक हस्तांतरण की तारीख को प्रचलित बाजार मूल्य पर आधारित होना चाहिए—उच्चतम न्यायालय एक साम्या न्यायालय भी होने के नाते, वास्तविक हस्तांतरण में विलंब के लिए प्रतिकर दे सकता है।

उत्तरदाता राज्य ने भू-अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 4 के अंतर्गत बिहार राज्य आवास बोर्ड द्वारा मकानों के निर्माण के प्रयोजन से ग्राम दिघा में 1034.94 एकड़ भूमि अर्जित करने के लिए एक अधिसूचना जारी की और अर्जित भूमि के लिए कीमत या प्रतिकर आवास बोर्ड द्वारा देना था न कि राज्य द्वारा अपनी निधियों से। जुलाई 1977 में, राज्य के राजस्व और उद्योग मंत्रालय ने धाराओं 6, 7 और 9 के अंतर्गत अधिसूचनाएं जारी करने और दावों और आपत्तियों पर विचार करने के बाद अर्जन की

पुष्टि की। 24.5.1980 को कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों (पांडेय परिवारों) से संबंधित 4.03 एकड़ वाली भूमि के एक भाग को बिना किसी कानूनी या संवैधानिक औचित्य के मुक्त कर दिया गया। इस मुक्ति को बिहार उच्च न्यायालय में रिट याचिकाओं द्वारा चुनौती दी गई, जिनसे वर्तमान दीवानी अपीलें और विशेष अनुमति याचिकाएं उद्भूत हुई हैं और न्यायालय में नई रिट याचिकाएं दायर करके भी।

अपीलों और याचिकाओं को अंशतः स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित: 1. भू-अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 48 के अंतर्गत सरकार द्वारा पारित मुक्ति का आदेश शून्य था, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता था। पांडेय परिवारों के पक्ष में भूमि की मुक्ति बिना किसी कानूनी या संवैधानिक औचित्य के पक्षपात का एक शुद्ध और सरल कार्य था। [583 जी-एच, 584 जी]

2. 19 अगस्त, 1974 को धारा 4 के अंतर्गत जारी संपूर्ण अधिसूचना वैध मानी जाएगी और पांडेय परिवारों को मुक्त की गई भूमि 19.8.74 को जिस प्रकार थी उसी प्रकार अर्जन का भाग बनेगी। मुक्ति कलेक्टर का एक पृथक और परवर्ती कार्य होने के कारण संपूर्ण अधिसूचना को अवैध नहीं कर सकती थी किंतु केवल मुक्त किए गए भाग को ही अवैध कर सकती थी। *लीला राम आदि. बनाम भारत संघ और अन्य.* [1976] 1 एससीआर 941 से विभेदित। [585 सी-डी, ई-एफ]

3:1 यह तर्क कि प्रतिकर कब्जे के वास्तविक हस्तांतरण की तारीख को प्रचलित भूमि के मूल्य के अनुसार दिया जाना चाहिए, क्योंकि भूमि की कीमत काफी बढ़ गई थी, दो कारणों से विधि के अंतर्गत सही नहीं है, अर्थात्: (i) कब्जा लेने में विलंब कारित करने के लिए कलेक्टर का दोष नहीं है क्योंकि मामले को न्यायालयों और सरकार के समक्ष दोनों जगह आगे बढ़ाया गया था और कार्यवाहियों को रोकना पड़ा था, जिसके परिणामस्वरूप कलेक्टर को कब्जा लेने या अपना पंचाट देने से रोका गया, यद्यपि सभी कार्यवाहियाँ हो चुकी थीं; और (ii) भूमि के निरंतर कब्जे में रहने वाले भूमि स्वामियों ने

उसका उपभोग किया था, विशेष रूप से भूमि अधिकांशतः आम के बगीचे थे और उन्हें उन्हें बाजार में बेचकर बड़े लाभ हुए होंगे। [586 जी-एच, 587 ए-बी]

3:2 तथापि, अपीलकर्ताओं का निःसंदेह साम्या में कुछ अतिरिक्त प्रतिकर के भुगतान का मामला है जिस राहत को उच्चतम न्यायालय द्वारा नकारा नहीं जा सकता जो न केवल विधि का न्यायालय है बल्कि साम्या का न्यायालय भी है। कलेक्टर द्वारा दिए जाने वाले या न्यायाधीश या उच्च न्यायालय द्वारा बढ़ाए जाने वाले प्रतिकर के अतिरिक्त अपीलकर्ताओं को प्रत्येक भूमि स्वामी के स्वामित्व वाली भूमि के मूल्य पर दो वर्षों के लिए साढ़े सात प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से गणना की गई ब्याज के रूप में साम्यपूर्ण प्रतिकर मिलना चाहिए। इस प्रकार मामले की विशेष परिस्थितियों में साम्यपूर्ण प्रतिकर दिया गया है, यदि कोई हो तो, अधिनियम के अंतर्गत देय प्रतिकर की राशि पर अपील। [587 सी-ई]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1983 की दीवानी अपील सं. 9973 से 9977

पटना उच्च न्यायालय के 1982 के दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला सं. 2170, 3435, 3879, 3436 और 3561 में 31 जनवरी, 1983 दिनांकित निर्णय और आदेश से विशेष अनुमति द्वारा अपीलें।

के साथ

1983 की विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) सं. 3098

पटना उच्च न्यायालय के 1982 के दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला सं. 3556 में 31 जनवरी, 1983 दिनांकित निर्णय और आदेश से।

और

1983 की विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) सं. 4428

पटना उच्च न्यायालय के 1982 के दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला सं. 2104 में 31 जनवरी, 1983 दिनांकित निर्णय और आदेश से।

और

रिट याचिका (दीवानी) सं. 13306-21, 1983 के 13346 और 1934 के 13229 और 1984 के 1324-42।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत।

अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:

*आर.पी. भट्ट और ए.के. श्रीवास्तव दीवानी अपील 9973/83 में।*

*ए.के. सेन और एम.पी. झा दीवानी अपील सं. 9974/83 में।*

*डी.पी. सिंह और बी.बी. सिंह दीवानी अपील सं. 9975/83 में।*

*वाई.एस. चितले, एल.आर. सिंह और गोपाल सिंह अपीलकर्ताओं के लिए।*

1983 की विशेष अनुमति याचिका सं. 4428 में याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

*एस.एस. जौहर और एस.एन. मिश्रा*

उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्ता:

*एफ.एस. नरीमन, राम बालक महतो, महाधिवक्ता, बी.पी. सिंह और रंजीत कुमार दीवानी अपील 9973/83 में।*

*एल.एन. सिंह, के.पी. वर्मा, महाधिवक्ता और जय नारायण*

*आर.पी. सिंह (रिट अपील सं. 13306-21 और 13346 में)*

के.पी. वर्मा, महाधिवक्ता और आर.पी. सिंह 1983 के विशेष अनुमति याचिका. सं. 4288 में।

न्यायालय का निर्णय द्वारा प्रदत्त किया गया

फजल अली, न्यायमूर्ति। कभी-कभी किसी विधि के अंतर्गत सामान्य जनहित में एक व्यावहारिक और प्रगतिशील कार्यवाही करते समय, जो निःसंदेह सही दिशा में एक कदम है, सरकार किसी नागरिक या नागरिकों के समूह के आंतरिक या बाह्य दबाव के सामने झुक जाती है ताकि उन्हें विशेष पक्ष दिखाया जा सके जो कार्यवाही की प्रकृति के प्रशंसनीय उद्देश्य को नष्ट कर देता है। ऐसा मार्ग सामान्य जनता की कीमत पर कुछ चुने हुए मित्रों की सहायता करने के लिए अपनाया जाता है और सार्थक राज्य कार्यवाही के बहुत उद्देश्य को निष्फल कर देता है। इसके अतिरिक्त, राज्य कार्यवाही इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के साथ सीधे टकराव में लाती है।

वर्तमान मामला हमें भू-अर्जन अधिनियम, 1894 (संक्षेप में, 'अधिनियम' कहा जाएगा) के अंतर्गत की गई राज्य कार्यवाही का एक ठोस उदाहरण प्रतीत होता है। यहाँ जो हुआ वह यह है कि जहाँ बिहार सरकार ने निम्न और मध्य आय वर्ग के लोगों के लिए मकान निर्माण और आवंटन के लिए भूमि का एक विशाल क्षेत्र अर्जित किया, वहीं उसने कुछ व्यक्तियों को विशुद्ध अनुचित और भ्रामक आधारों पर वैधानिक कार्यवाही से छूट देना उचित समझा। सौभाग्य से, चुनिंदा वर्ग में बहुत कम संख्या में ऐसे व्यक्ति शामिल थे जिनकी भूमि कुल अर्जित भूमि के एक छोटे अनुपात में थी।

यह अब हमें मामले के महत्वपूर्ण तथ्यों के विचार की ओर लाता है। 19.8.74 को बिहार सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत एक अधिसूचना जारी की गई थी जिसमें बिहार राज्य आवास बोर्ड द्वारा मकानों के निर्माण के प्रयोजन से ग्राम दिघा में 1034.94 एकड़ भूमि अर्जित करने की मांग की गई थी जिसमें यह उल्लेख था कि अर्जित भूमि के लिए कीमत या प्रतिकर आवास बोर्ड द्वारा दिया जाएगा न कि राज्य द्वारा अपनी निधियों से। उक्त अधिसूचना के अनुसरण में आपत्तियाँ मांगी गईं और

12.2.76 को सभी आपत्तियों का निपटारा किया गया। अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत एक घोषणा जारी की गई जो 20.2.76 को प्रकाशित की गई। 25.3.76 को प्रकाशन विभाग द्वारा प्राप्त किया गया और दावे दायर करने के लिए अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत सूचनाएं जारी की गईं। 14.4.76 को अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत अधिसूचना जारी की गई। 19.5.76 को 500 जितनी अधिक आपत्तियाँ दायर की गईं। इतना तो ठीक था। दुर्भाग्यवश, इसके बाद 8.11.76 को संसद सदस्य श्री राम अवतार शास्त्री द्वारा अर्जन कार्यवाहियों को वापस लेने के लिए एक अभ्यावेदन किया गया जिसका निपटारा दिसंबर, 1976 में कर दिया गया और उसे खारिज कर दिया गया।

इसके बाद, दर रिपोर्ट तैयार की गई जिसे कलेक्टर ने स्वीकार किया जिसने अपना अंतिम अनुमान दिया और उसे जनवरी, 1977 में सरकार को भेजा। अनुमान के अनुसार, रु. 8.30 करोड़ की राशि विभिन्न स्वामियों को जिनकी भूमि अर्जित की जानी थी, वितरित की जानी थी। जबकि मामला पूरा होने के करीब था, 1977 के आम चुनावों की तैयारियाँ की गईं जिसके परिणामस्वरूप पूरा मामला स्थगित कर दिया गया और ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। 24.5.80 को, जो एक निर्णायक तारीख है क्योंकि यह वर्तमान अपीलों और रिट याचिकाओं का विषय-वस्तु प्रतीत होती है, कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों, अर्थात् बद्री साहु, आर.एस. पांडेय और उनके संबंधियों (जिन्हें आगे 'पांडेय परिवार' कहा जाएगा) से संबंधित 4.03 एकड़ भूमि का एक भाग मुक्त किया गया। यह स्पष्ट नहीं है कि वे क्या विचार थे जो सरकार को पांडेय परिवारों को अनुकूल व्यवहार के लिए अलग करने की ओर ले गए। जुलाई, 1977 में किसी समय राज्य के राजस्व और उद्योग मंत्रालय ने अर्जन की पुष्टि की। अंततः, 12.12.77 को प्रश्नगत भूमि के अर्जन का मार्ग सुगम करने के लिए, केंद्र सरकार ने नगर भूमि सीमा अधिनियम के अंतर्गत अर्जन से विशुद्ध कृषि भूमि को छूट दी।

वर्ष 1978 में, श्री ठाकुर प्रसाद द्वारा, जिन्होंने आम चुनावों के बाद नए उद्योग मंत्री का पदभार संभाला था, मुख्यमंत्री को अर्जन के बारे में एक अभ्यावेदन किया गया जिन्होंने मामले में आगे की

कार्यवाहियों पर रोक लगा दी। इस बीच, उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की गई जिसे अंततः याचिकाकर्ताओं द्वारा वापस ले लिया गया और 1980 की शुरुआत में सरकार द्वारा रोक को रद्द कर दिया गया। मई, 1981 में उच्च न्यायालय में एक और रिट याचिका दायर की गई जिसमें मुख्यतः 24.5.80 को पांडेय परिवारों के पक्ष में भूमि की मुक्ति को इस आधार पर चुनौती दी गई कि उक्त मुक्ति अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है और इसलिए संपूर्ण अधिसूचना खराब और क्षेत्राधिकार रहित है।

जनवरी, 1982 में, प्रतिकर की राशि राज्य आवास बोर्ड द्वारा कोषागार में जमा की गई जिसके बाद 1.2.83 को अर्जित भूमि के संबंध में एक पंचाट दिया गया। ऊपर कहे गए तथ्यों और तारीखों की समग्रता स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि कलेक्टर द्वारा प्रतिकर अंतिम रूप देने में विलंब अप्रत्याशित परिस्थितियों के कारण था और इसलिए अपीलकर्ता इसकी शिकायत नहीं कर सकते क्योंकि जैसा कि पहले ही संकेत दिया गया है, यह अनेक अभ्यावेदनों पर सरकार और न्यायालयों द्वारा पारित स्थगन आदेशों के कारण था।

यह काफी दुर्भाग्यपूर्ण है कि जबकि एक ध्वनि उद्देश्य के लिए भूमि का अर्जन किया गया था और आवश्यक कदम उठाए गए थे, अर्जन विवाद में उलझ गया जिससे पक्षकारों के बीच गंभीर विवाद उत्पन्न हुए, विभिन्न दावे और आपत्तियाँ सामने आईं, जिसके परिणामस्वरूप उक्त आवास योजना 5-6 वर्षों से अधिक विलंबित हो गई। वास्तव में, यदि सरकार जब तक कब्जा लिया जाता अधिक समझदार और सतर्क रही होती, तो राज्य के आवास बोर्ड द्वारा मकान निर्माण का उद्देश्य बहुत पहले पूरा हो सकता था।

1983 की दीवानी अपील सं. 9973 के अपीलकर्ताओं के तर्कों का मुख्य आधार, जो विशेष अनुमति से है, यह था कि संपूर्ण अर्जन कार्यवाही और भूमि का अर्जन करने वाले कलेक्टर द्वारा पारित आदेश शून्य हो गए क्योंकि वे संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते थे। यह तर्क दिया गया कि सरकार के पास भूमि के एक भाग, अर्थात् 4.03 एकड़ को मुक्त करने का कोई औचित्य नहीं था।

तथापि मुख्य भूमि का कितना भी छोटा अंश हो, यह केवल एक विशेष समूह के व्यक्तियों, अर्थात् पांडेय परिवारों का पक्ष करने के लिए था, जिन्होंने कथित रूप से उस समय की सरकार पर बहुत अधिक प्रभाव का प्रयोग किया था और वह केवल अधिसूचना के उद्देश्य के साथ किसी उचित वर्गीकरण या संबंध के बिना एक ही निकाय के व्यक्तियों की सहायता करने के लिए किया गया था। पांडेय परिवारों से संबंधित भूमि की मुक्ति का समर्थन सरकार द्वारा इस आधार पर किया गया कि चूँकि उन्होंने 4.03 एकड़ द्वारा कवर किए गए पूरे क्षेत्र में सीमा की दीवारों के साथ बड़ी इमारतें खड़ी की थीं, इसलिए सरकार के लिए उन पर की गई निर्माणों को ध्वस्त करना बहुत कठिन होता। इस तर्क को खंडित करने के लिए, हमारे समक्ष अखंडनीय सामग्री प्रस्तुत की गई जो दर्शाती है कि पांडेय परिवारों की भूमि पर स्थित बड़ी इमारतों या मकानों का अभिवचन इस विशेष भूमि के अर्जन को वापस लेने के लिए कलेक्टर को सक्षम करने हेतु एक पूर्ण धोखा या मिथ्या बहाना था। सामग्री की जाँच पर, जिसे पांडेय परिवारों द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है, हम पाते हैं कि अपीलकर्ताओं के तर्क ठोस हैं और उन्हें प्रबल होना चाहिए। हमें पांडेय परिवारों की भूमि की तस्वीरें दिखाई गई हैं जो पेपरबुक के पृष्ठ 120 पर दिखती हैं, जो दर्शाती हैं कि वहाँ कोई बड़ी इमारतें या मकान नहीं हैं बल्कि केवल छोटी झोंपड़ियाँ हैं, शायद खेतों की सिंचाई के लिए ट्यूबवेल रखने के लिए उपयोग की जाती थीं। प्रश्नगत भूखंड सं. 3114 है जो पांडेय परिवारों का है। पृष्ठ 121 पर एक और तस्वीर है जो पांडेय परिवारों के स्वामित्व वाले भूखंड में छोटी झोंपड़ी दिखाती है। दूसरी ओर, अर्जित और अर्जन से वापस न ली गई भूमि में देव नारायण सिंह का एक भूखंड है जिस पर एक दो-मंजिला संरचना खड़ी है जो मवेशी रखने या खेत की देखभाल करने वाले चौकीदार के प्रयोजन के लिए भी अभिप्रेत है। इसके बावजूद, यदि पांडेय परिवारों के अभिवचन को स्वीकार किया जाना था तो देव नारायण सिंह का भी उनकी भूमि की मुक्ति के लिए एक बेहतर दावा था।



न तो ऊपर संदर्भित तस्वीरें और न ही यह तथ्य कि तस्वीर में दिखाए गए को छोड़कर कोई संरचना नहीं जो पांडेय परिवारों द्वारा बनाई गई थी, हमारे समक्ष विवादित की गई है। इसलिए, दीवानी अपील सं. 9973/83 में अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा सही तर्क दिया गया कि पांडेय परिवारों के पक्ष में भूमि की मुक्ति बिना किसी कानूनी या संवैधानिक औचित्य के पक्षपात का एक शुद्ध और सरल कार्य था। राज्य भी प्रश्नगत भूमि की मुक्ति का खंडन या समर्थन करने की स्थिति में नहीं था। हम यह भी उल्लेख कर सकते हैं कि यद्यपि पांडेय परिवारों को नोटिस जारी और तामील किया गया था, फिर भी वे अपने दावे का समर्थन करने के लिए इस न्यायालय में उपस्थित नहीं हुए। अतः, पक्षकारों के बीच कोई गंभीर विवाद नहीं प्रतीत होता कि सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत पारित मुक्ति का आदेश संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने के कारण शून्य था।

मामला यहाँ समाप्त नहीं होता बल्कि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष भूमि के संपूर्ण अर्जन को असंवैधानिक घोषित करने के लिए और प्रस्तुत किया, यद्यपि उसका बहुत छोटा अंश अनुच्छेद 14 के दुरुपयोग से प्रभावित था। यह दलील दी कि भूमि का संपूर्ण क्षेत्र एक अधिसूचना द्वारा अर्जित किया गया था और एक बार यह पाए जाने पर कि उसका सूक्ष्मतम भाग भी असंवैधानिक था, पूरी अधिसूचना को रद्द करना होगा। यदि अर्जन के समय पांडेय परिवारों की भूमि को जनहित में किसी विशेष आधार पर छोड़ दिया गया होता, तो निःसंदेह अपीलकर्ताओं का तर्क अखंडनीय होता। तथापि, जैसा कि ऊपर संकेत दिया गया है, यह इस मामले में हुआ नहीं प्रतीत होता। जहाँ धारा 4 की अधिसूचना 19.8.74 को जारी की गई थी, वहीं मुक्ति 24.5.80 को आई, अर्थात् लगभग छह वर्ष बाद। अतः, जो भी होगा वह यह है कि मुक्ति को इस द्वारा खराब और शून्य घोषित किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप धारा 4 के अंतर्गत 19.8.74 को जारी संपूर्ण अधिसूचना वैध मानी जाएगी और पांडेय परिवारों को मुक्त की गई भूमि 19.8.74 को जिस प्रकार थी उसी प्रकार अर्जन का भाग बनेगी।

शायद, अपीलकर्ता इस न्यायालय को संपूर्ण अधिसूचना रद्द करने के लिए राजी करना चाहते थे ताकि जब एक नई अधिसूचना जारी की जाए तो वे अर्जन किए जाने के समय और वास्तविक कब्जा लिए जाने के बीच की अवधि में भूमि और अन्य वस्तुओं की कीमत में अचानक उछाल और वृद्धि के मद्देनजर अधिक प्रतिकर प्राप्त कर सकें। उपर्युक्त कारणों से जो हमने दिए हैं, हम इस तर्क प्रक्रिया को बरकरार रखने में असमर्थ हैं। मुक्ति कलेक्टर का एक पृथक और परवर्ती कार्य होने के कारण संपूर्ण अधिसूचना को अवैध नहीं कर सकती थी किंतु केवल मुक्त किए गए भाग को ही अवैध कर सकती थी, जिसका परिणाम यह होगा कि मूल अधिसूचना को उसकी स्थिति पर बहाल किया जाएगा जैसा वह 19.8.74 को थी।

राज्य के अधिवक्ता ने *लीला राम आदि. बनाम भारत संघ और अन्य.*<sup>1</sup> आदि. के मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया। यह मामला वर्तमान मामले से स्पष्ट रूप से विभेदनीय है क्योंकि उस मामले में तर्क इस आधार पर किया गया था कि चूँकि भूमि के विशाल क्षेत्रों को फ्रीज कर दिया गया था, इसलिए भूमि अर्जित करने का कोई सार्वजनिक उद्देश्य नहीं था और इसलिए अर्जन खराब था। तर्क को अस्वीकार करते हुए खन्ना, न्यायमूर्ति, न्यायालय की ओर से इस प्रकार कहा:-

"यह महत्वपूर्ण है कि अधिसूचना द्वारा कवर की गई भूमि एक छोटा भूखंड नहीं है बल्कि हजारों एकड़ को कवर करने वाला एक विशाल क्षेत्र है। ऐसे मामलों में सार्वजनिक उद्देश्य विनिर्दिष्ट करने के लिए अधिक सटीकता पर जोर देना कठिन है क्योंकि यह बिल्कुल संभव है कि अधिसूचना द्वारा कवर किए गए विभिन्न भूखंडों को अंतरिम सामान्य योजना में निर्धारित विभिन्न प्रयोजनों के लिए उपयोग करना पड़ सकता है। संबंधित प्राधिकरणों के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा भी कोई आपत्ति नहीं ली गई कि अधिसूचना में उल्लिखित सार्वजनिक उद्देश्य पर्याप्त रूप से विशिष्ट नहीं था और इस प्रकार वह प्रस्तावित अर्जन के विरुद्ध प्रभावी आपत्तियाँ दायर करने में सक्षम नहीं

---

<sup>1</sup> [1976] 1 एससीआर 341.

था।"

ऊपर उद्धृत मामला वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता क्योंकि उच्च न्यायालय के समक्ष कभी भी यह तर्क नहीं दिया गया कि अर्जन बिना किसी सार्वजनिक उद्देश्य के था। तथापि, दोनों पक्षकारों द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि यदि धारा 4 की अधिसूचना जारी होते समय अर्जित भूमि और पांडेय परिवारों की भूमि के बीच बिना किसी उचित वर्गीकरण के घृणित भेद किया गया होता ताकि संपूर्ण अर्जन का एक अभिन्न भाग बन सके, तो संपूर्ण अधिसूचना रद्द कर दी जाती। यहाँ, हम पाते हैं कि पांडेय परिवारों के पक्ष में भूमि की मुक्ति प्रारंभिक अधिसूचना के तीन वर्ष बाद आई और इसलिए यह समग्रता में धारा 4 की अधिसूचना को अवैध नहीं कर सकती। जो होगा वह यह है कि मुक्त भाग शून्य माना जाएगा और विधि की दृष्टि में धारा 4 की अधिसूचना पांडेय परिवारों की भूमि सहित समग्र रूप से अर्जित भूमि के लिए एक अधिसूचना मानी जाएगी।

उपर्युक्त बिंदुओं पर हमारे निर्णय के मद्देनजर, हमारे लिए इस प्रश्न पर आगे विस्तार करना आवश्यक नहीं है।

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया दूसरा प्रश्न यह था कि धारा 4 की अधिसूचना की तारीख और भूमि का कब्जा लेने के बीच पर्याप्त विलंब था जिस अवधि में भूमि की कीमत काफी बढ़ गई थी और इसलिए, प्रतिकर कब्जे के वास्तविक हस्तांतरण की तारीख को प्रचलित भूमि के मूल्य के अनुसार दिया जाना चाहिए। यह तर्क भी निम्नलिखित कारणों से निराधार है:-

- (1) कब्जा लेने में विलंब कारित करने के लिए कलेक्टर का दोष नहीं है क्योंकि मामले को न्यायालयों और सरकार के समक्ष दोनों जगह आगे बढ़ाया गया था और कार्यवाहियों को रोकना पड़ा था, जिसके परिणामस्वरूप कलेक्टर को कब्जा लेने या अपना पंचाट देने से रोका गया, यद्यपि अन्य सभी कार्यवाहियाँ हो चुकी थीं।

(2) भूमि के निरंतर कब्जे में रहने वाले भूमि स्वामियों ने उसका उपभोग किया था, विशेष रूप से भूमि अधिकांशतः आम के बगीचे थे और उन्हें बाजार में उन्हें बेचकर बड़े लाभ हुए होंगे।

पक्षकारों और अन्यो द्वारा कब्जा लेने में उठाए गए विभिन्न कदमों के विश्लेषण पर, निःसंदेह लगभग डेढ़ वर्ष का विलंब है और गणना और सुविधा के प्रयोजन से जब पूर्णांकित किया जाए, तो विलंब दो वर्ष का माना जा सकता है। जहाँ तक इस विलंब का संबंध है, अपीलकर्ताओं का निःसंदेह विधि के अंतर्गत नहीं बल्कि साम्या में कुछ अतिरिक्त प्रतिकर के भुगतान का मामला है और जैसा कि यह न्यायालय न केवल विधि का न्यायालय है बल्कि साम्या का भी न्यायालय है, हमारे लिए अपीलकर्ताओं को यह राहत नकारना असंभव होगा। मामले के विभिन्न पहलुओं और पक्षों को ध्यान में लेने के बाद हम स्पष्ट मत रखते हैं कि कलेक्टर द्वारा दिए जाने वाले या न्यायाधीश या उच्च न्यायालय द्वारा बढ़ाए जाने वाले प्रतिकर के अतिरिक्त, अपीलकर्ताओं को प्रत्येक भूमि स्वामी के स्वामित्व वाली भूमि के मूल्य पर दो वर्षों के लिए साढ़े सात प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से गणना की गई ब्याज के रूप में साम्यपूर्ण प्रतिकर मिलना चाहिए। यह साम्यपूर्ण प्रतिकर मामले की विशेष परिस्थितियों में दिया गया है और प्रतिकर की राशि पर अधिनियम के अंतर्गत अपील, यदि कोई हो, का विषय-वस्तु नहीं होगा।

चूँकि इन अपीलों और रिट याचिकाओं में शामिल बिंदु समान हैं, इसलिए हमने उनका निपटारा एक साझा निर्णय द्वारा करने का निर्णय किया।

उपर्युक्त कारणों से, अपीलें, विशेष अनुमति और रिट याचिकाएं तदनुसार निपटाई जाती हैं किंतु लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

*अपीलें और याचिकाएं अंशतः स्वीकार की जाती हैं।*

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।